National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.nationaljournals.com
ISSN: 2455-9040
Received: 02-09-2021, Accepted: 15-09-2021, Published: 30-09-2021
Volume 6, Issue 3, 2021, Page No. 19-29

भारत में नागरिक स्वतंत्रता और मानवाधिकार: संस्थाओं एवं आयोगों का क्रमबद्ध अध्ययन

डॉ अनुराग पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, दयाल सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्विविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध लेख भारत में दो सबसे अहम मुद्दों नागरिक अधिकारों और मानवाधिकार आंदोलनों के विश्लेषण का एक प्रयास है। भारत सबसे बड़े लोकतान्त्रिक देश के रूप में जाना जाता है और यहाँ का लगभग हर नागरिक किसी ना किसी रूप मे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करता है। भारत एक विविधताओं वाला देश माना जाता है, और भारतीय संविधान में इन विविधताओं को समायोजित करने के लिए कई प्रावधानों का उल्लेख किया गया है। यह लेख इन्हीं कुछ संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का क्रमबद्ध अध्ययन करता है।

मूलशब्द: मानव अधिकार, महिला अधिकार, दलित-आदिवासी अधिकार, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, भारतीय न्यायपालिका।

प्रस्तावना

लोकतंत्र की खूबसूरती इस तथ्य में निहित होती है कि यह विभिन्न प्रकार के विचारों को समाहित करता है और वाद विवाद के लिए एक स्थान प्रदान करता है। लेकिन कई बार कुछ आवाजें अनसुनी रह जाती है और सरकार इन आवाजों एवं विचारों को समाहित करने में कई बार असफल हो जाती है। लोकतंत्र में यह स्थिति वंचित समूहों के मध्य एक शंका उत्पन्न करती है ये समूह वो होते है जिन्हे जाने अनजाने अधिकार, न्याय या स्वतंत्रता आदि से वंचित किया गया हो। इसी कारण ये समूह सरकार पर उनकी मांगों को पूरा करने के लिए और अपनी आवाज सरकार तक पहुचाने के लिए सरकार एवं उसके तंत्र के विरुद्ध दबाव बनाने का प्रयास करते है। कोई भी आंदोलन व्यक्तियों के ऐसे समूह को कहा जा सकता है जो अपने साझा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक विचारों को अग्रिम करने के लिए एक साथ काम करते है। इन आंदोलनों को या तो मानवाधिकार आंदोलन या नागरिक स्वतंत्रता आंदोलनों के रूप में जाना जाता है।

मानव अधिकारों को ऐसे अधिकारों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सभी मनुष्यों में निहित हैं। इस आधार पर ये कहा जा सकता है कि जो भी व्यक्ति किसी भी समाज का वासी है वो सामान रूप से बिना किसी भेदभाव के इन सब प्रकार के मानव अधिकारों का हकदार हैं, चाहे उसकी राष्ट्रीयता, जगह या निवास, धर्म, जाति, रंग या भाषा इत्यादि कुछ भी हो। अतः मानव अधिकार भेदभाव का विरोध करता है और सब व्यक्तिओं को सामान मानता है। ये सभी मानव अधिकार परस्पर अन्योन्याश्रित और अविभाज्य हैं। मानव अधिकार सभी नागरिक के लिए बराबरी की स्थिति पैदा करने के लिए सरकार की सकारात्मक कार्रवाई का प्रबल पक्षधर है। मानव अधिकार अक्सर अल्पसंख्यक समूहों (भाषाई अथवा धार्मिक इत्यादि), महिलाओं, दलितों, अन्य पिछड़े वर्गों, आदिवासियों, क्षेत्रीय अल्पसंख्यकों, वंचित समूहों आदि के संरक्षण के साथ भी जुड़ा हुआ है।

वहीँ दूसरी ओर, नागरिक स्वतंत्रताये वो सामान्य अधिकार एवं स्वतंत्रता हैं जो किसी भी देश के नागरिक को उस देश के राष्ट्रीय कानूनों द्वारा प्रदान किये जाते है। इन्हे बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रता माना जाता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आंदोलन की स्वतंत्रता, मनमाने ढंग से गिरफ्तारी से स्वतंत्रता, गोष्ठी करने की स्वतंत्रता, संघ और धार्मिक पूजा की स्वतंत्रता इत्यादि इस तरह के अधिकार और स्वतंत्रता एक लोकतांत्रिक समाज का आधार बनते हैं और अक्सर तानाशाही तंत्र में रहने वाले नागरिकों के पास ये नागरिक अधिकार स्पष्ट नही होते है।

नागरिक स्वतंत्रता मानव अधिकार से अलग है, हलाकि कभी कभी ये दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची नजर आते है। मानवाधिकार वे अधिकार हैं जिन्हे व्यक्ति को व्यक्ति होने के नाते मिले होते हैं। कोई सरकारी निकाय, समूह या व्यक्ति को एक व्यक्ति को मानव अधिकारों से वंचित

नहीं कर सकता है। जीवन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, निष्पक्ष न्याय, यातना से सुरक्षा, और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता इत्यादि कुछ मूलभूत मानव अधिकार हैं। भारत ने व्यक्तियों के मानव अधिकारों के संरक्षण के क्षेत्र में कुछ प्रावधान किये हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए राष्ट्रीय आयोग इत्यादि, ये विभिन्न आयोग व्यक्ति या समूह के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं और कई बार राज्य और न्यायिक निकायों को व्यक्तियों के मानव अधिकारों की रक्षा करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करने के लिए निर्देश देते हैं।

नागरिक स्वतंत्रता किसी व्यक्ति की नागरिकता के आधार पर उसको प्राप्त होतीं है, एवं इन नागरिक स्वतंत्रताओं को देश के संविधान द्वारा सुरक्षा मिलती है। नागरिक स्वतंत्रता नागरिकों की सरकार या किसी भी संगठन द्वारा भेदभाव और अनुचित कार्रवाई से व्यक्ति की रक्षा करती हैं। यह एक दार्शनिक और कानूनी आधार रखती है तथा यह राष्ट्र और व्यक्ति के बीच के समझोते की एक कड़ी है। नागरिक अधिकार प्रत्येक देश के संविधान से जुड़े हुए होते है वही दूसरी ओर मानव अधिकार को एक सार्वभौमिक अधिकार माना जाता है, जो प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होते है।

जहाँ एक ओर मानव अधिकार सार्वभौमिक हैं एवं वे किसी भी परिस्थिति में परिवर्तित नही होते, वही दूसरी ओर नागरिक स्वतंत्रता एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में भिन्न होती हैं क्युकी ये मूल रूप से देश के कानूनों पर निर्भर करती हैं। चाहे कोई भी राष्ट्रीयता, धर्म और नस्ल इत्यादि हों, मानव अधिकार हमेशा सार्वभौमिक प्रकृति के होते है, तथा नागरिक स्वतंत्रता को एक देश के कानून की सीमाओं के भीतर रखे जाते हैं, और अन्य बातों के अलावा, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पारंपरिक मानकों से संबंधित होते हैं। भारत में नागरिक स्वतंत्रताओं को मौलिक अधिकार के माध्यम से संरक्षित किया जाता है।

विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारतीय संविधान सर्वाधिक अधिकार केंद्रित दस्तावेज है। जिस समय संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकार के वैशिवक घोषणापत्र (1948) स्वीकार किया गया,[1] ठीक उसी समय भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार किया गया था। भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार एवं नीति निर्देशक तत्वों में मानवाधिकार की भावना परिलक्षित होती है।

व्यक्ति अंशत: या पूर्णत: यह अपेक्षा करता है कि उसके सर्वांगीण विकास के लिए उसे अनुकूल वातावरण मिले। संविधान में वर्णित अधिकार अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराते हैं। अधिकारों को व्यक्ति की उन मांगों के द्वारा परिभाषित किया गया है जो उसके व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए अनिवार्य हैं और समाज एवं राज्य द्वारा मान्य है। मौलिक अधिकार राज्य द्वारा संविधान प्रदत्त है जो विधि द्वारा प्रवर्तनीय है।

संविधान के अंतर्गत मानवाधिकार

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि भारतीय संविधान अपने नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार प्रदान करता है। यह मौलिक अधिकार संविधान के भाग तीन (अनुच्छेद 12-35) में वर्णित है। सरदार बल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता वाली समिति (मूल अधिकार और अल्पसंख्यक समिति) ने इसे अंतिम रूप प्रदान किया।[2]

अधिकार की प्रकृति

मौलिक अधिकारों को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है। लेकिन इन्हें मौलिक इसलिए कहा गया है कि ये साधारण कानून से ऊपर हैं। इन्हें सिर्फ संविधान संशोधन के द्वारा ही बदला जा सकता है। ये अधिकार व्यकित के आत्मसम्मान तथा उसके कल्याण को प्रोत्साहन देते हैं और मानव व्यकितत्व के संपूर्ण विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। अनुच्छेद 32 जो संविधान के भाग तीन में संवैधानिक उपचारों के अधिकार के तहत वर्णित है, के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय अन्य न्यायसंगत अधिकारों की ही तरह इन अधिकारों को भी संरक्षण प्रदान करती है। मौलिक अधिकार असीम नहीं है, इन्हें भी सीमाबद्ध किया जा सकता है। कुछ प्रतिबंध संविधान में ही वर्णित है जबकि सरकार द्वारा भी इन पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। लेकिन इसके प्रतिबंध की तार्किकता का निर्णय न्यायालय ही कर सकता है। इस तरह से व्यकितगत स्वतंत्रता और सामाजिक नियंत्रण के बीच तालमेल स्थापित होता है। आपातकाल के दौरान मौलिक अधिकारों को खारिज किया जा सकता है।

भारत में मौलिक अधिकार

भारत के संविधान में निहित मौलिक अधिकार भारत के प्रत्येक नागरिकों के लिए सुनिशिचत है। अन्य कानून की तुलना में इन नागरिक अधिकारों को वर्चस्व प्राप्त है। व्यकितगत अधिकार, जैसे कि विधि के समक्ष समानता, वाक एवं अभिव्यकित की स्वतंत्रता, संघ बनाने एवं शांतिपूर्ण सभा करने की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता और नागरिक अधिकारों के संरक्षण हेतु संवैधानिक उपचारों का अधिकार, जो कि अधिकतर उदारवादी प्रजातांत्रिक देशों में प्राप्त है, भारतीय संविधान में भी इन सबको समावेशित किया गया है। भारत में इन मौलिक

अधिकारों का लक्ष्य सामाजिक कुरीतियों को हतोत्साहित करना भी है। अस्पृश्यता, धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान आदि के आधार पर भेदभाव तथा बंधुआ मजदूरी को समाप्त करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। यह अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार को भी संरक्षित करता है।

भारतीय संविधान में छः प्रकार के मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 और 18 में समानता के अधिकार का वर्णन है। यह दूसरे अधिकार और स्वतंत्रता को पूरा आधार प्रदान करता है। अनुच्छेद 14 भारत के प्रत्येक नागरिक को विधि के द्वारा समान संरक्षण का अधिकार देता है। अनुच्छेद 15 में वर्णित है कि धर्म, वंश, जाति, लिंग, भाषा, जन्मस्थान आदि के आधार पर लोगों में भेदभाव नहीं किया जाएगा। हालांकि महिलाओं, बच्चों, सामाजिक या शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गो तथा अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजातियों के लिए राज्य विशेष प्रावधान कर सकता है। अनुच्छेद 16 यह सुनिशिचत करता है कि रोजगार के अवसर के मामले में राज्य किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा। हालांकि इसके कुछ अपवाद भी हैं। यदि किसी पद के लिए उस क्षेत्र और भाषा विशेष की जानकारी अनिवार्य हो तो संसद इस दिशा में कानून बना सकती है कि उस क्षेत्र के निवासी ही उस पद के उम्मीदवार हो। शैक्षणिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उचित प्रतिनिधित्व के लिए राज्य रोजगार में आरक्षण का प्रावधान कर सकता है (अनुच्छेद 16(4)। अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता के उन्मूलन का प्रावधान करता है। अनुच्छेद 18 के अनुसार कोई भी भारतीय नागरिक किसी विदेशी राज्य से किसी भी प्रकार की उपाधि ग्रहण नहीं करेगा। लेकिन सैन्य एवं शैक्षणिक उपाधियां ग्रहण की जा सकती है। भारत रत्न और पदम विभूषण से सम्मानित व्यकित उपाधि के रूप में इसका उपयोग नहीं कर सकते।[3]

अनुच्छेद 19, 20, तथा 21 स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान करते हैं। वाक एवं अभिव्यकित की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण सभा करने का अधिकार, संघ बनाने का अधिकार, भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भी हिस्से में बसने का अधिकार, कोई भी पेशा, व्यापार, वाणिज्य या व्यवसाय करने की स्वतंत्रता; ये सभी स्वतंत्रता के अधिकार भारतीय नागरिकों को प्राप्त हैं।[4]

भारत की संप्रभुता व अखंडता, समाज में नैतिकता एवं सामाजिक व्यवस्था कायम रखने के लिए इस स्वतंत्रता को प्रतिबंधित किया जा सकता है। वाक एवं अभिव्यकित की स्वतंत्रता जिसमें प्रेस की स्वतंत्रता भी समाहित है, को भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से संबंध आदि के हित में सीमित किया जा सकता है।

अनुच्छेद 20 और 21 के अन्तर्गत संविधान जीने का अधिकार एवं व्यकितगत स्वतंत्रता सुनिशिचत करता है। अनुच्छेद 20 के अनुसार किसी भी व्यकित को दी गई सजा उस समय विधि द्वारा निर्धारित सजा से अधिक नहीं हो सकती है। किसी भी व्यकित को एक ही अपराध के लिए दो बार सजा नहीं दी जा सकती। अनुच्छेद 21 के अनुसार विधि सम्मत तरीके के अलावे किसी अन्य तरीके से किसी भी व्यकित के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार का हनन नहीं किया जा सकता है। इसलिए व्यकितगत स्वतंत्रता तभी अवरोधित किया जा सकता है जब उस व्यकित ने स्पष्टतः अपराध किया हो। इस अधिकार में मरने का अधिकार शामिल नहीं है इसलिए आत्महत्या करना या उसकी कोशिश करना एक अपराध है। सामान्य परिसिथतियों में गिरफ्तार हुए व्यकित के अधिकार, जीने के अधिकार एवं व्यकितगत स्वतंत्रता में वर्णित है। किसी भी व्यकित को उसके द्वारा किए गए अपराध की सूचना दिए बिना उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। गिरफ्तार हुए व्यकित को अपने बचाव के लिए अपने इच्छानुरूप वकील रखने का अधिकार है। गिरफ्तार हुए व्यकित को नजदीकी अदालत में चौबीस घंटे के भीतर पेश करना अनिवार्य है (अनुच्छेद 22)।[5]

उल्लेखनीय है कि 86वें संविधान संशोधन (सन 2002) के द्वारा प्राथमिक शिक्षा को अनुच्छेद 21(ए) के अन्तर्गत मौलिक अधिकार का रूप प्रदान किया गया। इसके अनुसार 6-14 वर्ष की आयु वाले बच्चों को राज्य द्वारा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है।

अनुच्छेद 23 और 24 में शोषण के विरुद्ध अधिकार का वर्णन है। इसमें दो तरह के प्रावधान हैं। पहला, मानव व्यापार एवं बलात श्रम से संबंधित है जबकि दूसरा, 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक उधोगों एवं खानों में नियोजित किए जाने को प्रतिबंधित करता है।[6]

अनुच्छेद 25, 26, 27 और 28 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करते हैं। भारत राज्य के धर्मनिरपेक्ष प्रकृति को बनाए रखना ही इस अधिकार का उद्देश्य है। राज्य की दृषिट में सभी धर्म समान है तथा किसी भी धर्म विशेष को प्राथमिकता नहीं दी जाएगी। हरेक व्यकित किसी भी धार्मिक प्रथा को मानने या न मानने के लिए स्वतंत्र है। हालांकि राज्य कुछ धार्मिक प्रथाओं पर सामाजिक व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाए रखने हेतु प्रतिबंध लगा सकता है। उदाहरणस्वरूप सिख धर्म के अनुयायियों को कृपाण वहन करने पर राज्य प्रतिबंध लगा सकती है। कुछ प्रावधानों के अन्तर्गत धार्मिक समुदाय चैरिटेबल संस्थाएं बना सकते हैं। किसी भी व्यकित को धर्म के प्रचार के नाम पर किए गए खर्च की राशि पर कर देने को बाध्य नहीं किया जा सकता। राज्य के द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं को धार्मिक शिक्षा देने की मनाही है।[7]

अनुच्छेद 29 और 30 में शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक अधिकार के संरक्षण के लिए विशेष प्रावधान हैं। अनुच्छेद 29 भारत के सभी नागरिकों पर लागू है जबकि अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों के अधिकार से संबंधित है। कोई भी धार्मिक या भाषाई समुदाय जिसकी अपनी भाषा और लिपि है उसे उनको संरक्षित रखने का पूरा अधिकार है। अपनी संस्कृति के संरक्षण एवं विकास के लिए सभी धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक समुदाय अपना शैक्षणिक संस्थान स्थापित कर सकता है। कुप्रशासन की सिथति में राज्य किसी भी संस्था में हस्तक्षेप तो कर सकता है लेकिन अनुदान देते समय किसी संस्था के साथ भेदभाव नहीं कर सकता।[8]

अनुच्छेद 32 संवैधानिक उपचारों के अधिकार से संबद्ध है। मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की सिथति में हरेक नागरिक को इस अनुच्छेद के अनुसार यह अधिकार है कि वह इसके संरक्षण के लिए न्यायालय के समक्ष अनुरोध कर सकता है। इस संदर्भ में न्यायालय विभिन्न प्रकार के रिट जारी कर सकता है। ये रिट हैं - बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार पृच्छा। आपातकाल की सिथति में केन्द्र सरकार इन्हें खारिज भी कर सकती है।[9]

अनुच्छेद 19 और 31 में संपत्ति के अधिकार का प्रावधान था। अनुच्छेद 19(च) के अनुसार हरेक नागरिक को संपत्ति अर्जित करने का उसे रखने का तथा उसे बेचने का अधिकार था। चवालीसवें संविधान संशोधन (1978) में संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकार से अलग कर दिया गया। तत्पश्चात संविधान में 300(ए) के तहत एक नया अनुच्छेद जोड़ा गया जिसके अनुसार इसे कानूनी अधिकार का दर्जा दिया गया। इस अनुच्छेद के तहत यह व्यवस्था की गई कि बिना विधि सम्मत कानून के किसी भी व्यकित को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। यदि विधायिका कोई ऐसा कानून बनाती है जिससे किसी नागरिक को संपत्ति का नुकसान होता है तो उस सिथति में राज्य मुआवजा देने को बाध्य नहीं है। इस सिथति में अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत व्यकित न्यायालय में याचिका दायर नहीं कर सकता।[10]

वस्तुत: अधिकार वह स्वतंत्रता है जो व्यकित और समुदाय के हित में होने चाहिए। भारतीय संविधान के अन्तर्गत सुनिशिचत मौलिक अधिकार न्यायालय द्वारा सुरक्षित एवं व्याख्यित किये जाते है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि वे असीम हैं और संवैधानिक संशोधन के तहत बदले नहीं जा सकते।

भारत में लोकतंत्र और नागरिक स्वतंत्रता आंदोलन

भारत के संदर्भ में मानव अधिकार परिचर्चा के अंतर्गत तीन मुख्य चर्चा के विषय है-

नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार

वंचितों का अधिकार (जैसे महिला, दलित और आदिवासी जो समाज में हाशिये पर हैं)

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार।

नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार

राज्य के बढ़ते असंतोष की वजह से साठ और सत्तर का दशक आंदोलनों और राजनीतिक उथल-पुथल से भरा हुआ था। इसी समय कांग्रेस पार्टी कांग्रेस (ओ), जिसका नेतृत्व पुराने नेताओं द्वारा तथा कांग्रेस (आर) इंदिरा गांधी के नेतृत्व वाली, नामक दो गुटों में बंट गई। लेकिन कालांतर में कांग्रेस (आर) ही मुख्य कांग्रेस पार्टी रही और इंदिरा गांधी इसकी मुख्य नेत्री थीं। आने वाले वर्ष भी राजनीतिक उथल पुथल से भरे रहे। इस दिशा में गुजरात का नवनिर्माण आंदोलन (1974) और महंगाई, बेरोजगारी तथा कांग्रेस शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ जयप्रकाश नारायण का आंदोलन इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन आंदोलनों से अपने शासन के प्रति खतरा को देखते हुए इंदिरा गांधी सरकार ने देश में आंतरिक अशांति को मुद्दा बनाते हुए आपातकाल (1975-77) की घोषणा कर दी। इस दौरान अधिकतर नागरिक और राजनीतिक अधिकार निलंबित कर दिए गए। विपक्ष और उनके कार्यकर्ताओं तथा सरकार के आलोचकों को कारागार में डाल दिया गया। यह एक ऐसा समय था जब संविधान द्वारा सुनिशिचत सभी नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का राज्य द्वारा अतिक्रमण किया गया। यह आपातकाल भारतीय प्रजातांत्रिक इतिहास में एक काले धब्बे के समान है। मनमाने तरीके से बंदी बनाये जाने और पुलिस द्वारा बर्बरता पूर्वक कार्रवाई करने इत्यादि से भारतीय नागरिकों के मानव अधिकार का जमकर उल्लंघन हुआ।[11]

आगामी 20 वर्षों में नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार आंदोलन और अधिक स्पष्ट और व्यापक हो गया। शहरी मध्यवर्गीय उदारवादी बुद्धिजीवी वर्ग से परे विस्तृत एवं विभिन्न सामाजिक राजनीतिक आधार लेकर इसका विकास हुआ। अधिकतर नागरिकों के साथ हिंसक व्यवहार तथा उनके मौलिक मानवाधिकार के बारंबार हनन होने से 1980 के दशक में सरकार के खिलाफ विभिन्न प्रकार के विद्रोहों में वृद्धि हुई तथा देश के कई भागों में अलग-अलग राज्य निर्माण के लिए आंदोलन होने लगे। यह वह समय था जब विभिन्न प्रकार के मानवाधिकार संगठन असितत्व में आये। इंदिरा गांधी की हत्या तथा उसके बाद 1984 के सिख दंगों ने राज्य द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकार की सुरक्षा पर गंभीर प्रश्नचिन्ह लगा दिया।

असम तथा महाराष्ट्र में हिन्दीभाषी क्षेत्र के लोगों के साथ मानवाधिकारों के हनन मानव अधिकार के विकृत स्वरूप को प्रस्तुत करता है। इसलिए भारत में नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार असहज सिथति में विधमान है। इसमें कोई शक नहीं कि संविधान हरेक नागरिक के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का प्रावधान करता है मगर वास्तविक दृश्य कुछ और दर्शाता है।

यहाँ इस तथ्य पर भी ध्यान देने की जरूरत है कि जागरूकता की कमी और राज्य मशीनरी के डर से कई बार गरीब, कुछ महिलाएं, पिछड़े वर्ग तथा हाशिए पर रहने वाले समूह अन्याय के विरुद्ध आवाज नहीं उठा पाते है। इन समूहों/वर्गों के नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को सुनिश्चित करने और रक्षा करने के लिए कुछ राष्ट्रिय संगठन अस्तित्व में है, जिनमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, राष्ट्रिय सेविका समिति, दुर्गा वाहिनी, बनवासी कल्याण आश्रम, सेवा भारती, भारतीय जनता युवा मोर्चा इत्यादि प्रमुख माने जाते हैं। ये संगठन वंचित एवं हाशिये पर पड़े हुए उपेक्षित समूहों के न्याय को सुनिश्चित करने के लिए और उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए आवाज उठाते हैं। ये संगठन इन वंचित समूहों के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए कई प्रकार के मानवतावादी कार्य करते हैं, दूसरे शब्दों में ये संगठन अनसुनी परेशानियों, अधिकारों इत्यादि को एक आवाज देते हैं।

उपरोक्त वर्णित नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार अधिकांशत: व्यकितगत अधिकारों पर केंद्रित है लेकिन 70 के दशक के मध्य काल में भारत में मानवाधिकार के एक नए रूप के विकास पर जोर दिया गया जो वंचित वर्ग या हाशिए पर रहने वाले समूहों जैसे महिला, दलित, आदिवासी आदि के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए सामूहिक अधिकार की धारणा पर आधारित था।

1970 के दशक में महिला आंदोलन का सूत्रपात हुआ। महिलाओं से संबंधित आयोग ने 1974 में एक रिपोर्ट पेश की जिसमें हर क्षेत्र में महिलाओं के पिछड़े होने का वर्णन था। विभिन्न प्रकार के महिला समूहों जैसे सेवा (स्व रोजगार महिला संघ) एडवा (अखिल भारतीय प्रजातांत्रिक महिला संघ), मानुषी, संयुक्त महिला फोरम एवं संघर्षरत महिला केन्द्र आदि के अभ्युदय होने से समाज में महिलाओं की सिथति के बारे में नई जागृति आई तथा यह लोक चर्चा का विषय बन गया। इन संगठनों ने महिलाओं के साथ होने वाले घरेलू हिंसा, दहेज हत्या, बलात्कार, कैद बदसलूकी, महिला अवैध व्यापार, शिक्षण संस्थानों एवं घरेलू नौकरानी के रूप में काम करने वाली महिलाओं के साथ यौन शोषण आदि के खिलाफ जोरदार आवाज उठायी। यहाँ राष्ट्रीय सेविका समिति एवं दुर्गा वाहिनी द्वारा किए गए कार्य अतुलनीय हैं, इन संगठनों ने ना केवल भारतीय महिलाओं में आत्मविश्वास जगाने का कार्य किया अपितु महिलाओं के अधिकारों के लिए भी संघर्ष किया जो अनवरत जारी है। इन महिला आंदोलनों ने देश में व्याप्त नरवादी प्रभुत्व, जातिवादी तथा जमींदारी व्यवस्था के विकृत रूप को सामने रखते हुए महिलाओं में उनके अधिकार के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में मदद की। हलांकि इसकी शुरूआत शहरी आंदोलन के रूप में हुई लेकिन महिलाओं के अधिकार हेतु राजनीतिक सहभागिता के बढ़ते प्रचार-प्रसार के कारण इसने एक व्यापक आंदोलन का रूप ले लिया। इन महिला आंदोलनों की वजह से स्थानीय स्वशासन में 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन के अंतर्गत महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई।

आपातकाल के बाद वंचित समूहोंवर्गों के सामाजिक एकीकरण पर बल दिया गया। कई राजनीतिक और सामाजिक कार्यकत्ताओं ने दलित और आदिवासी आंदोलन पर अपने ध्यान केंद्रित किए। दलित आदिवासी और भूमिहीन मजदूर के ऐतिहासिक और संरचनागत रूप से पिछड़े होने की बात को इन लोगों ने स्पष्ट करने की कोशिश की। वर्तमान राजनीतिक और सामाजिक परिचर्चा में इन वर्गों के सशक्तीकरण की अवधारणा सामने आई है।

1980 के दशक के मध्य काल से ही प्राकृतिक संसाधनों पर दलित, एवं आदिवासियों को उनके अधिकार दिलाने के लिए प्रयास जारी हैं। बड़े-बड़े बांधों के निर्माण, विकास परियोजनाएं, वन्य परियोजनाएं, खनन इत्यादि को लेकर विस्थापित आदिवासियों के हक के लिए उठी आवाज ने इनके आंदोलन को और बल प्रदान किया है। दलित और आदिवासी विस्थापन के अधिक शिकार हुए हैं। नर्मदा बचाओं आंदोलन, मछुआरों के संघर्ष और दलित आंदोलन ने वंचित समुदायों के मुद्दे को भारत की मुख्य राजनीतिक धारा से जोड़ दिया। और यहाँ वनवासी कल्याण आश्रम द्वारा किए गए कार्य सराहनीय हैं, कल्याण आश्रम ने आदिवासियों के मध्य जागरूकता अभियान चलाया एवं कई स्कूल तथा शैक्षणिक संस्थानों की व्यवस्था करि, वनवासियों को मुख्यधारा में जोड़ने का प्रमुख कार्य भी वनवासी कल्याण आश्रम द्वारा किया गया एवं आज भी वनवासी कल्याण आश्रम देश के विभिन्न भागों में आदिवासियों के मध्य कार्य कर रहा है एवं उनकी मुखर आवाज बना हुआ है। वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दलित एवं अन्य वंचित समुदायों के मध्य कार्य कर रहा है, ताकि सभी वंचित वर्गों में चेतना जागृत हो और सभी अपने अधिकारों के लिए सजग रहें।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार

नागरिक और राजनीतिक अधिकार या सामूहिक अधिकार की तुलना में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार नये हैं। विकास के मुख्य मसौदों में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार का शामिल होना आमलोगों के सामाजिक विकास तथा गरीबी उन्मूलन के लिए संस्थागत एवं वित्तीय सहायता संबंधी संगठनों के उदय से संबंधित है। ये सामान्यत: गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ) के नाम से जाने जाते हैं। शुरूआती दौर में, ऐसे अधिकांश एन.जी.ओ. कल्याणकारी राज्य के सहयोगी के रूप में कल्याणकारी अवधारणा के साथ विकसित हुए।

मौलिक अधिकारों के विकास में सक्रिय न्यायपालिका की भूमिका ने आर्थिक और सामाजिक अधिकारों पर बल दिया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 जो जीने के अधिकार से संबंधित है, का विस्तार हुआ। जीने के अधिकार का तात्पर्य है गरिमामय जीवन जिसके अंतर्गत जीविकोपार्जन के अधिकार, शिक्षा के अधिकार तथा स्वास्थ्य के अधिकार आते हैं।

1993 में मानवाधिकार पर वियना में हुए सम्मेलन से शुरू आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर हुए वैशिवक अन्य सम्मेलनों ने इन अधिकारों को कई अन्तराष्ट्रीय विकास संगठनों के मुख्य प्रावधानों में शामिल करने में योगदान दिया। अलग-अलग संगठनों ने किसी विशेष अधिकार का मुद्दा उठाया। शिक्षा के मौलिक अधिकार के प्रचार-प्रसार भी इसमें शामिल है। तत्पश्चात 86वें संशोधन द्वारा प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकारों में शामिल किया गया। महिलाओं और असंगठित कामगारों के लिए स्वरोजगार का अधिकार, व्यापक स्वास्थ्य सुविधाओं का अधिकार और आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के लिए भी समान्तर रूप से प्रचार-प्रसार जारी रहा।

उपभोक्ताओं के अधिकार के संरक्षण हेतु पर्यावरण तथा उपभोक्ता संरक्षण आंदोलन (1980 के दशक से) ने कई नए विधेयकों और नीतियों के लिए मार्ग प्रशस्त किए। 1970 का दशक मुख्यत: नागरिक अधिकारों की स्वतंत्रता के आंदोलनों के लिए जाना जाता है। 1980 का दशक सामूहिक अधिकार दिलाने हेतु आंदोलनों के लिए चर्चित रहा जबकि 1990 का दशक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के उत्थान के लिए चर्चित रहा।

मानवाधिकार का कार्यान्वयन: भारतीय न्यायपालिका एवं अन्य भारतीय मानवाधिकार संस्थाएं

मानवाधिकार एवं भारतीय न्यायपालिका

भारतीय संविधान में न्यायपालिका का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। संविधान की सही एवं अंतिम व्याख्या करने का अधिकार न्यायपालिका को ही है। न्यायपालिका को यह शकित प्राप्त है कि वह विधायिका एवं कार्यपालिका के ऐसे कानून एवं नीतियों को अवैध घोषित कर दे जो विधि सम्मत न हो। देश के सभी न्यायालय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को मानने के लिए बाध्य है। फिर भी अन्य प्राधिकार जैसे सदर या अन्य न्यायाधिकरण सर्वोच्च न्यायालय के सहायक के रूप में काम करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय कानून या न्यायालय की अवमानना के मामले में सजा दे सकता है। प्राप्त संवैधानिक अधिकार के अंतर्गत वह राज्य के अन्य अंगों से जवाब-तलब भी कर सकता है।[12]

हाल के वर्षों में, सर्वोच्च न्यायालय का कायक्षेत्र काफी बढ़ गया है तथा बहुआयामी संस्था के रूप में काम करते हुए इसकी भूमिका भारतीय नागरिकों के सामान्य एवं राजनीतिक क्षेत्रों के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में व्यकितगत और सामूहिक अधिकार के विस्तार एवं संरक्षण में काफी बढ़ गई है।[13]

न्यायिक आदेश की प्रकृति

न्यायालय द्वारा घोषित आदेश का प्रवत्र्तन पूरी तरह से आदेशों के प्रकृति पर निर्भर रहते हैं, प्रधानत: दो प्रकार के न्यायिक आदेश होते हैं -

(क) घोषणात्मक तथा (ख) आदेशात्मक

अनुच्छेद 141 एवं 144 के अंतर्गत घोषणात्मक आदेश एक न्यायिक निर्णय (राज्य अधिकरण को महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश के बिना) राज्य द्वारा इसे माने जाने तक इंतजार कर सकते हैं जो कि बाध्यकारी हैं। आदेशात्मक आदेश, कार्यपालिका द्वारा न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश के समय सीमा के अंदर ही उसे कार्यरूप देना जरूरी होता है।[14]

जे.पी. उन्नीकृष्णन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य वाद में दिए गए आदेश घोषणात्मक आदेश के उदाहरण हैं, जिसमें न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्राप्त जीने के अधिकार के तहत शिक्षा के अधिकार को शामिल करने पर जोर दिया। इसमें कहा गया कि 14 वर्ष से कम आयु के भारतीय बच्चों को मुफ्त प्राथमिक शिक्षा पाने का मौलिक अधिकार शामिल है। इस निर्णय के 9 वर्ष के बाद 86वें संविधान संशोधन द्वारा 6 वर्ष से 14 वर्ष के आयु के प्रत्येक बच्चों के लिए शिक्षा के मौलिक अधिकार को कानूनी रूप दिया गया।[15]

बंधुआ मुकित मोर्चा वाद के निर्णय न्यायालय के आदेशात्मक आदेश के अन्तर्गत आते हैं। इस वाद के तहत न्यायालय ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, (1948) तथा बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1976 जैसे कल्याणकारी विधान की अवहेलना को अनुच्छेद 21 के

तहत प्राप्त गरिमामय जीवन के अधिकार की अवहेलना के समान माना। एशियाड वर्किंग वाद तथा ओल्गा टेलिसवाद भी आदेशात्मक आदेश माने जाते हैं जिसके तहत न्यायालय ने इन घटनाओं को अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना तथा पीड़ितों के पक्ष में निर्णय दिया। बाल मजदूरी पर प्रतिबंध को भी इसी आदेश के अन्तर्गत माना जा सकता है।[16]

मानव अधिकार और भारत में इनकी सुरक्षा

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

मानवाधिकार अधिनियम, 1993 के विधिक निर्णय के अंतर्गत 12 अक्टूबर 1993 को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना हुई। पिछले कुछ वर्षों से यह आयोग मानवाधिकार की सुरक्षा हेतु सकारात्मक कदम उठाए हैं। इसने इस अधिनियम के अंतर्गत देश में मानवाधिकार की सुरक्षा तथा उसको बढ़ावा देने का कार्य किया है। मानवाधिकार अधिनियम 1993 के अंतर्गत सुरक्षा के उपाय के अलावा भी पिछले कुछ वर्षों से इसमें खामियां उजागर हुई हैं। इसके समुचित एवं प्रभावपूर्ण रूप से कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि इस अधिनियम का पुनर्मूल्यांकन किया जाए तथा इसकी कार्य प्रणाली में समुचित संशोधन पर भी जोर दिया जाए।[17]

आयोग सामान्यत: मानवाधिकार के उल्लंघन के मामले की प्राय: स्वयं जांच करती या नागरिक सामाजिक संगठन, मीडिया, संबद्ध व जागरूक नागरिक या सिद्धहस्त सलाहकार के द्वारा मामले को सामने लाने पर गंभीरता से लेती है। यह समाज के सभी वर्गों विशेषत: वंचित व हासिए पर रहने वाले वर्गों के मानवाधिकार की सुरक्षा से संबंधित मामले पर अपनी दृषिट केंद्रित रखती है।[18]

इस मामले में जनजागरूकता के बढ़ते प्रभाव को आयोग की उपलबिध के रूप में देखा जा सकता है। यह जागरूकता पिछले कुछ वर्षों में आयोग के पास मानवाधिकार के हनन से संबंधित मामलों की वृद्धि के रूप में परिलक्षित होती है। आयोग इन मामलों को निम्न भागों में बांटती है - (1) कारावास के दौरान मृत्यु, (2) पुलिसिया बर्बरता, (यातना, गैरकानूनी गिरफ्तारी, झूठा आरोप आदि), (3) छदम मुठभेड़, (4) महिला एवं बच्चों से संबंधित मामले, (5) दलित-अल्पसंख्यक समुदाय के खिलाफ हिंसक कार्रवाई के मामले, (6) बंधुआ मजदूर, (7) सशस्त्र बलअद्र्ध सैनिक बल द्वारा दुव्र्यवहार और (8) अन्य महत्वपूर्ण मामले।[19]

किसी भी शिकायतकत्र्ता से प्राप्त आवेदन के बाद आयोग संबंधित सरकार या प्राधिकरण से वक्तव्य की मांग करती है। संबंधित क्षेत्र से जवाब मिलने के बाद आयोग उस मामले से संबंधित सकारात्मक पक्ष के मसौदे को तैयार करती है। इस तरह की प्रक्रिया पूरी होने के बाद आयोग अधिनियम की धारा 18 एवं 19 के अंतर्गत विस्तृत निर्देश व सुझाव संबंधित प्राधिकरण को सौंपता है।[20]

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

भारत सरकार द्वारा अल्पसंख्यकों के विकास के अवलोकन व मूल्यांकन हेतु एक राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग का गठन किया गया। हिन्दू धर्म के लोग और इसके कमजोर तबके को छोड़ प्राय: अन्य सारे धर्म के मानने वाले लोग भारत में अल्पसंख्यक समुदाय में आते हैं। इस आयोग को अल्पसंख्यक आयोग के नाम से भी जाना जाता है। 1993 में भारतीय संसद के एक अधिनियम के अंतर्गत इसका गठन किया गया।[21]

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा अल्पसंख्यकों के अधिकार संरक्षण के कार्य

अल्पसंख्यक एवं पिछड़े वर्गों के लिए संविधान प्रदत्त अधिकारों के पुनमर्ूल्यांकन हेतु आयोग ने एक रिपोर्ट 31 मार्च 2002 को प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में आयोग ने मुसलमान, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं से संबंधित समस्याओं का जिक्र किया था। अल्पसंख्यक समुदाय विशेषतया मुसलमान वर्गों के लिए आयोग ने अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के अंतर्गत पिछड़े मुसलमानों के लिए आरक्षण की मांग का समर्थन भी किया। आयोग का मुख्य उद्देश्य है कि अल्पसंख्यकों के सम्मानपूर्वक जीवन की रक्षा हो, उन्हें एक सम्माननीय स्थान प्राप्त हो तथा उनकी रक्षा के लिए कानून प्रभावपूर्ण ढ़ंग से लागू किए जाएं।[22]

राष्ट्रीय महिला आयोग

राष्ट्रीय महिला आयोग भारतीय संघ के अंतर्गत महिलाओं के लिए एक वैधानिक निकाय है। भारतीय संविधान के कुछ विशेष प्रावधानों के अंतर्गत इस आयोग की स्थापना जनवरी 1990 में की गई। इसकी सदस्यता अध्यक्ष सहित छह हैं।

राष्ट्रीय महिला आयोग के समक्ष मामले

राष्ट्रीय महिला आयोग के समक्ष कई ऐसे वाद आये जो महत्वपूर्ण हैं। एक वाद श्रीमती भनवारी देवी से संबंधित है। भनवारी देवी राजस्थान के ग्रामीण इलाके में काम करने वाले महिला विकास कार्यक्रम में एक Þसाथिनß के तहत काम करती थी जिसके साथ बाल विवाह के खिलाफ अभियान के दौरान गाँव के कुछ लोगों द्वारा बलात्कार किया गया था। बाद में, जयपुर के जिला व सत्र न्यायाधीश ने इस केस की सुनवाई करते हुए पकड़े गए

लोगों को बलात्कार का दोषी पाया। प्रेस में छपी खबर के अनुसार दोषियों के खिलाफ लिए गये इस निर्णय से कुछ लोग नाखुश दिखे। राष्ट्रीय महिला आयोग इस मामले को राज्य सरकार के साथ-साथ केन्द्र सरकार के पास भी ले गया। आयोग के हस्तक्षेप के बाद प्रधानमंत्री ने पीड़ित को मुआवजे के तौर पर 10000 रूपये की एक सहयोग राशि देने की घोषणा की तथा इस मामले की सी.बी.आई. से कराने का आश्वासन दिया। आयोग ने उन महिला संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान की जिसने पीड़ित के पक्ष को लेकर कानूनी लड़ाई लड़ी।[23]

एक अन्य वाद श्रीमती शांति देवी से संबंधित है। शांति देवी राजस्थान के बाड़मेर जिले के कानान गाँव के मांगेलाल राव की पत्नी थी। उसके पति की मृत्यु के दो वर्ष बाद भी विधवा पेंशन जब उसे नहीं मिला तो उसने शिकायत दर्ज कराई, किन्तु कोई भी काम न हुआ। शांति देवी की इस शिकायत को आयोग ने बाड़मेर के जिला समाहर्ता तथा राजस्व अधिकारी को सौंपा, जिसे जिला कलक्टर ने सही माना तथा उन्होंने ट्रेजरी अधिकारी को इस बाबत उचित निर्देश भी भेजा।[24]

एक अन्य मामले में सुश्री रूपाली जैन जो एक गैर सरकारी संगठन द्वारा चलाए जा रहे स्कूल में नौकरी कर रही थी, को बिना किसी कारण बताए उसे नौकरी से हटा दिया। आयोग ने इस मामले को फिरोजाबाद के जिला पदाधिकारी को सौंपा जिसके जवाब में जिला पदाधिकारी ने आयोग के पास यह सूचना भेजी कि सुश्री रूपाली जैन को पुन: उसके पद पर लौटा लिया गया है।[25]

इसी तरह दिल्ली की श्रीमती चंचल बजाज ने आयोग के पास एक अर्जी दी कि उसे उसका पुत्र उस फ्लैट में रहने नहीं दे रहा है जिस पर उसका भी मालिकाना हक है। चंचल बजाज का पुत्र शादी के बाद गुड़गांव में एक किराये के घर में रहता था। श्रीमती बजाज ने अपने फ्लैट के मालिकाना हक मिलने के बाद अपने पुत्र को उस फ्लैट में रहने को कहा। पहले श्रीमती बजाज एक सरकारी आवास में रहती थी लेकिन वत्र्तमान में वह दिल्ली के एक किराये के मकान में रहती थी जिसका किराया देने की सिथति में वह नहीं थी। इसलिए वह भी गुड़गांव के अपने फ्लैट में रहना चाहती थी किन्तु उसका पुत्र एवं पुत्रवधु ने उसे इसकी इजाजत नहीं दी। आयोग के पास मामला जाने पर आयोग ने इस मामले पर शीघ्र सुनवाई की। तत्पश्चात, श्रीमती चंचल बजाज के पुत्र सचिन बजाज ने फ्लैट को बेचने के बाद अपनी माँ को 5,49,000 रूपये का चेक प्रदान किया। दोनों पक्षों को संतुष्ट करते हुए इस मामले को आयोग ने मध्यस्थता करते हुए आसानी से निपटाया।[26]

एक शिकायत कोटद्वार (उत्तरांचल) की रहने वाली श्रीमती सावित्री ने आयोग के पास अपने मूक व बधिर पुत्री के शोषण से संबंधित दायर की। श्रीमती सावित्री की पुत्री सुनीता (बदला हुआ नाम) दिल्ली के एक स्कूल में पढ़ती थी। सावित्री के एक पड़ोसी महेन्द्र प्रसाद थे। महेन्द्र प्रसाद के पुत्र रोहित कुमार (बदला हुआ नाम) भी पढ़ाई के सिलसिले में दिल्ली के आर के पुरम मुहल्ले में रहता था। कुछ वर्ष बाद सावित्री ने अपनी पुत्री को मूक बधिर स्कूल से वापस कोटद्वार ले आई। रोहित कुमार का बराबर सावित्री के घर आना-जाना लगा रहता था। इस मिलन के तहत रोहित कुमार तथा सुनीता के बीच शारीरिक संबंध बन गए जिसके चलते सुनीता गर्ववती हो गई। इस बात का खुलासा होने पर सावित्री ने रोहित पर उसकी पुत्री से शादी करने का दबाब डाला और जुलाई 2004 में कोटद्वार में ही उन दोनों की शादी हो गई। इन दोनों की शादी का पंजीकरण भी कर दिया गया। इसके बाद अगस्त 2004 में महेन्द्र प्रसाद ने अपने पुत्र और पुत्रवधू को अपने संपत्ति से बेदखल कर दिया। अक्टूबर 2004 में सुनीता ने एक कन्या को जन्म दिया और इसके बाद रोहित ने उसे छोड़ दिया। इस अन्याय के खिलाफ सावित्री पुलिस के पास न्याय मांगने गई पर उसकी गुहार अनसुनी कर दी गई। तब उसने अपनी शिकायत राष्ट्रीय महिला आयोग में की। आयोग ने पौरी गढ़वाल के पुलिस अधीक्षक के पास एक सम्मन भेजा कि इस मामले में यथाशीघ्र उचित कार्रवाई करे। आयोग के हस्तक्षेप के बाद पुलिस ने उसके पति को खोज निकाला और उससे पूछताछ की। तत्पश्चात वह अपनी पत्नी और पुत्री को साथ रखने के लिए राजी हुआ।[27]

गुजरात में 2002 में हुए हिंसक कार्रवाई के दौरान महिलाओं के मानवाधिकार हनन के खिलाफ आयोग गहरी संवेदना प्रकट की। हालांकि आयोग ने कुछ संगठनों और मीडिया को महिलाओं की बुरी अवस्था को बढ़ा-चढ़ा कर बताने का दोषी पाया। नफीसा हुसैन, जो कि राष्ट्रीय महिला आयोग की सदस्य थी, ने गुजरात की सांप्रदायिक हिंसा के दौरान अल्पसंख्यक समुदाय के महिलाओं के साथ हुए हिंसक वारदात को अनावश्यक रूप से बढ़ा चढ़ाकर दिखलाने के लिए मीडिया तथा कुछ संगठनों को दोषी बताया।[28]

संक्षेप में, उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय महिला आयोग के कार्य एवं सुझाव विभिन्न सकारात्मक प्रकृति के होते हैं। कुछ मामले आयोग स्वत: अपने हाथ ले लेता है तो कुछ राज्य आयोग के माध्यम से लेता है तथा कुछ की सुनवाई शिकायत के आधार पर करता है। अन्तत: यह कहा जा सकता है कि आयोग हरेक शिकायत के मामले को गंभीरता से लेते हुए उसके निपटारे का सटीक हल ढूंढने की कोशिश करता है और आयोग की बातों पर सर्वत्र ध्यान दिया जाता है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति संबंधी राष्ट्रीय आयोग

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत वैसे लोग आते हैं जिन्हें संविधान मे अनुसूचित किया गया हो। ये वैसे लोग हैं जो हिन्दू समाज से संबंधित हैं तथा सदियों से भेदभावपूर्ण रवैये के कारण समाज की मुख्य धारा से अलग-थलग रहे हैं तथा इन्हें राज्य द्वारा उचित स्थान दिलाने हेतु विशेष प्रावधान व सहायता की जरूरत होती है। अनुसूचित जाति को दलित या निम्न हिन्दू जाति के रूप में भी जाना जाता है, जबकि अनुसूचित जनजाति को आदिवासी से संबद्ध किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 338 तथा 338(ए) के अन्तर्गत दो वैधानिक निकाय, अनुसूचित जाति के लिए राष्ट्रीय आयोग तथा अनुसूचित जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग के गठन का प्रावधान है। ये आयोग संविधान तथा अन्य कानूनों के अंतर्गत इनके हितों की रक्षा व कल्याण के उपायों का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन करती है।[29]

इतिहास

स्मरणीय है कि शोषण, अन्याय आदि के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करने तथा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक हितों से संबद्ध क्षेत्रों में इन समुदाय के लोगों को प्रोत्साहन देने के लिए संविधान में कुछ विशेष प्रावधान की व्यवस्था की गई है। अप्रजातांत्रिक जाति व्यवस्था तथा उनके पिछड़ेपन के कारण अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग चुनिंदा कार्यालय, सरकारी नौकरी तथा शिक्षण संस्थानों आदि में उचित स्थान नहीं पा सके। इसलिए प्रजातांत्रिक व्यवस्था में उनके प्रभावपूर्ण हिस्सेदारी सुनिशिचत कराने के लिए उनके लिए आरक्षण का प्रावधान रखा गया। इसके अलावा, संविधान के अनुच्छेद 338 के तहत उनके लिए एक विशेष अधिकारी की नियुकित का प्रावधान भी रखा गया। इस विशेष अधिकारी को अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के आयुक्त का दर्जा प्राप्त है जो संविधान के अंतर्गत प्रदत्त विभिन्न रक्षोपाय प्रावधानों का प्रभावपूर्ण अनुपालन के प्रति प्रतिबद्ध होता है और अनुसूचित जाति एवं जनजाति से संबंधित उनके मानवाधिकार के संरक्षण संबंधी सभी मामलों की जाँच पड़ताल करता है।[30]

46वें संविधान संशोधन के अंतर्गत इस आयोग को एक सदस्यीय से बहुसदस्यीय बना दिया गया। अनुच्छेद 338 के अंतर्गत सरकार ने बहुसदस्यीय आयोग के गठन का निर्णय लिया। फलत: इस संदर्भ में गृह मंत्रालय ने प्रस्ताव संख्या 13013977-एस.सी.एस.टी. (1) दिनांक 21.7.1978 के अंतर्गत भोला पासवान शास्त्री की अध्यक्षता में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए प्रथम आयोग का गठन किया।[31]

बहुसदस्यीय आयोग के प्रावधान में कल्याण मंत्रालय ने अपनी प्रस्ताव संख्या बीसी-130151286 –एससीडीटप दिनांक 1.9.1987 के अंतर्गत संशोधन किया गया और आयोग का नाम बदल कर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग कर दिया गया। इसका गठन राष्ट्र स्तरीय सहायक इकाई के रूप में किया गया जो इन समुदायों के विकास के प्रश्न तथा विस्तृत पहलुओं पर सरकार को सलाह देती है।[32]

65वें संविधान संशोधन विधेयक (1990) के अंतर्गत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए एक वैधानिक राष्ट्रीय आयोग का प्रावधान रखा गया। इस प्रावधान को 12-3-1992 को कानूनी मान्यता मिली और तब इस विधेयक ने कल्याण मंत्रालय द्वारा 1987 में गठित किए गए आयोग का स्थान ले लिया।[33]

89वें संविधान संशोधन अधिनियम 2003 (जो 19-2-2004 से प्रवर्तन में आया) के अंतर्गत पुराने आयोग को दो भागों में विभक्त कर दिया गया - (1) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग तथा (2) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग। सामाजिक न्याय एवं सशक्तीकरण मंत्रालय ने 20 फरवरी 2004 को राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के लिए नियम संहिता प्रस्तुत की।[34]

दलितों के अधिकार की सुरक्षा हेतु अनुसूचित जाति एवं जनजाति के राष्ट्रीय आयोगों की भूमिका

तमिलनाडू में दलितों पर पुलिस गोलीबारी

तमिलनाडू के दक्षिण आरकोट जिले के वशिष्टपुरम गांव में 17 जनवरी 1995 को अनुसूचित जाति के दो लोगों को पुलिस ने उस वक्त गोली मार दी जब वे उनकी ही जाति के लोगों को पुलिस के लाठी चार्ज से बचाव का प्रयत्न कर रहे थे। पुलिस ने लाठी चार्ज इसलिए किया क्योंकि ये लोग उक्त गली में डा. अम्बेडकर का झंडा फहराने की कोशिश कर रहे थे। अन्य जाति के लोगों द्वारा अनुसूचित जाति के लोगों को घर से निकाल बाहर करने में पुलिस द्वारा की जा रही सहायता का भी आरोप लगाया गया। मीडिया के लोगों को इस मामले से संबंधित कोई भी खबर छापने की इजाजत नहीं दी गई। पुलिस ने दो राउंड गोली चलाई जिसमें ज्योति एवं महेन्द्र नामक दो व्यकित घायल हुए जिन्हें अस्पताल में भर्ती किया गया, जहां से बाद में वे स्वस्थ होकर बाहर निकले। जबकि मुठभेड़ में अद्रविड़ के लोगों में श्री शन्मुगम तथा श्री रमेश नामक दो व्यकितयों की पीट-पीटकर हत्या कर दी। पुलिस ने दोषियों के खिलाफ शिकायत दर्ज करते हुए चार्जशीट दाखिल की। आयोग ने इस घटना की निंदा की तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के निर्देश का समर्थन किया। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने तमिलनाडू के

मुख्य सचिव को दिशा निर्देश दिया कि वे श्री शन्मुगम की विधवा को मुआवजा के तौर पर एक लाख रूपया दे तथा उसे जीविकोपार्जन हेतु नौकरी भी दे जबकि दूसरे मृतक श्री रमेश के पिता को एक लाख रूपया देने के लिए कहा। इस एक लाख रूपये में 20 हजार नगद तुरंत देने को कहा गया तथा शेष 80 हजार को किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में सावधि जमा के तौर पर जमा किए जाने की बात कही गई जिससे उसे हर महीने कुछ ब्याज प्राप्त हो सके। आयोग ने पुलिस की गोली से घायल श्री मुत्थु के पुत्र श्री ज्योति तथा श्री पेरूमन के पुत्र श्री महेन्द्र को भी 30-30 हजार (प्रत्येक को) देने को कहा। इस 30 हजार में 5 हजार नगद के रूप में तुरंत देने को कहा तथा शेष 25 हजार रूपये को किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में दीर्घावधि वाले जमा के तहत जमा करने को कहा, जिससे प्रत्येक महीने उसे ब्याजस्वरूप कुछ रकम प्राप्त हो सके।[35]

पिछले कुछ वर्षों के दौरान झज्झर (हरियाणा), उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात, उड़ीसा तथा अन्य राज्यों में दलितों के साथ होनेवाले हिंसक वारदातों की भी जांच आयोग ने की। नीतिश सरकार द्वारा सितंबर 2007 में महादलित आयोग के गठन की आयोग ने आलोचना की। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने महादलित आयोग को असंवैधानिक करार दिया। राज्य सरकार ने 22 दलित उपजातियों में से 18 को महादलित वर्ग के अंतर्गत वर्गीकृत किया। जिन चार उपजातियों को महादलित का दर्जा न मिला वे थीं - दुसाध या पासवान, रविदास (चमार), धोबी (कपड़ा धोने वाला आदमी) एवं पासी (तारी बेचने वाला)। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने राज्य सरकार के इस एकतरफा फैसले के विरोध स्वरूप बूटा सिंह की अध्यक्षता में एक बैठक बुलायी। इस बैठक में सामाजिक न्याय मंत्रालय, जन प्रशिक्षण विभाग तथा गृह मंत्रालय के अधिकारीगण भी शामिल हुए थे। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने इस बात की शिकायत की कि बिहार राज्य में अनुसूचित जाति के राज्य आयोग का गठन नहीं हुआ है, यदि राज्य सरकार दलित समुदाय की भलाई के लिए काम करना चाहती है तो सर्वप्रथम इस तरह का आयोग गठित करे।[36]

भारत में मानवाधिकार: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारत में मानवाधिकार की सिथति एक बहुआयामी परिप्रेक्ष्य को दर्शाता है। एक तरफ तो मानवाधिकार के संरक्षण हेतु कई प्रकार के संवैधानिक प्रावधान मौजूद हैं जबकि दूसरी तरफ वंचित वर्गों जैसे अल्पसंख्यकों, महिलाओं, दलितों, आदिवासियों, असंगठित मजदूरों आदि के मानवाधिकार का बड़े पैमाने पर हनन भी होता रहा है। भारतीय मानवाधिकार समूहों तथा कर्यकत्राओं द्वारा अकसर यह पता चलता है कि हासिये पर रहने वाले ये लोग आज भी समाज की मुख्य धारा से अलग-थलग हैं। हालांकि भारत में मानवाधिकार का हनन आज भी जारी है फिर भी दक्षिण एशिया के अन्य देशों की तरह इस मामले में भारत बदनाम नहीं हैं। फ्रीडम हाउस द्वारा जारी फ्रीडम रिपोर्ट 'वल्र्ड 2006 में वास्तविक सच्चाई बताते हुए भारत को राजनीतिक अधिकार रेटिंग में दूसरा स्थान दिया तथा नागरिक स्वतंत्रता रेटिंग में तीसरा स्थान दिया।

भारत में मानवाधिकार का सर्वे एक जटिल स्वरूप प्रस्तुत करता है। एक तरफ भारतीय संविधान देश के हरेक नागरिक को कुछ मौलिक अधिकार प्रदान करता है तथा मानवाधिकार के हनन को रोकने हेतु कुछ संस्थागत उपबंध भी करता है जबकि दूसरी तरफ मौलिक मानवाधिकार के हनन की गंभीर घटनाएं भी घटती रहती हैं। यह बात निशिचत रूप से माना जाना चाहिए कि लोगों के आत्मसम्मान, असितत्व तथा राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का संपूर्ण विकास और प्रजातंत्र के समग्र विकास के लिए मानवाधिकार का संरक्षण एवं संवद्र्धन अनिवार्य और अत्यावश्यक है।

संदर्भ सूची

1. United Nations, "Universal Declaration of Human Rights," Accessed Via: https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights. Dated. 2/12/2020.
2. Desai DA. "Framing of India's Constitution: Contribution of Sardar Patel," *Journal of the Indian Law Institute*. Jamuary-March. 1988:30(1):1-18.
3. Basu DD. (Reprint,) Introduction to the Constitution of India, 18th edition (New Delhi: Wadhwa & Company), 2000, 78-132.
4. Ibid.
5. Ibid.
6. Ibid.
7. Ibid.
8. Ibid.
9. Ibid.
10. Ibid.
11. Engineer, Asghar Ali. Communalism in India: A Historical and Empirical Study, New Delhi, Vikas Publishing House. 1995, 94-104.
12. Dasana Prayas. "Supreme Court of India in Recognizing and Enforcing Human Rights", Social Science Research Network, October. 18, 2009.
13. Ibid.
14. Ibid. see also, Chowdhury, Payel Rai. "Judicial

Activism and Human Rights in India: A Critical Appraisal", The International Journal of Human Rights, 2010, 5(7).
15. Ibid.
16. Bandhua Mukti Morcha vs Union of India, 1984, 3 SCC, 161.
17. National Human Rights Commission. India. Accessed Via: https://nhrc.nic.in/. Dated. 5/12/2020.
18. Ibid.
19. Ibid.
20. Ibid.
21. National Commission for Minorities. Ministry of Minority Affairs. Government of India. Accessed Via: http://ncm.nic.in/homepage/homepage.php. Dated. 9/12/2020.
22. Ibid.
23. National Commission for Women. Accessed Via: http://ncw.nic.in/ncw-cells/complaint-investigation-cell. Dated. 11/12/2020.
24. Ibid.
25. Ibid.
26. Ibid.
27. Ibid.
28. Ibid.
29. National Commission for Scheduled Caste. Government of India Accessed Via: http://ncsc.nic.in/. Dated. 15/12/2020. National Commission for Scheduled Tribes. Government of India. Accessed Via: https://ncst.nic.in/. Dated. 15/12/2020.
30. Ibid.
31. Ibid.
32. Ibid.
33. Ibid.
34. Ibid.
35. Human Rights Watch. Accessed Via: https://www.hrw.org/reports/1999/india/India994-13.htm. Dated. 20/12/2020.
36. National Commission for Scheduled Caste. Government of India Accessed Via: http://ncsc.nic.in/. Dated. 15/12/2020. National Commission for Scheduled Tribes. Government of India. Accessed Via: https://ncst.nic.in/. Dated. 15/12/2020.